॥ सुयं मे आउसं ॥

श्रुतदीप रिसर्च फाउंडेशन का संवाद-सेतु

श्रुतदीप

विक्रम संवत् २०७६ • वर्ष : ४ • अंक : १ • जून २०२०

चिरंजीव विचार

मुनिश्री वैराग्यरतिविजय गणी

विचार दो प्रकार के होते हैं। पहला तात्कालिक और दूसरा चिरस्थायी। व्यक्तिगत और अल्पकालीन विचार तात्कालिक कक्षा के हैं, जिनका प्रभाव और परिणाम कुछ समय तक ही दिखलाई देता है। इसके बिल्कुल विपरीत, जो विचार समग्र समष्टि के हित की बात करता है, उस विचार का प्रभाव और परिणाम दोनों दीर्घकालीन सिद्ध होते हैं।

मनुष्य कोई भी विचार किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए करता है। अगर उद्देश्य थोडे समय में ही हांसिल हो जाने जैसा है, तो निश्चित रूप से उस विचार की आयु भी अल्पकालीन ही होगी। अधिकांश लोगों का जीवन केवल ऐसे ही तात्कालिक विचारों में समाया रहता है और उसी में पूरा भी हो जाता है। वैसे चिरंजीवी विचार करने की क्षमता तो प्रत्येक व्यक्ति में होती है, मगर उसका जरुरी साहस, बहुत थोडे लोग ही कर पाते हैं।

भारतवर्ष का सौभाग्य है कि, यहां चिरंजीवीविचारों को जन्म देनेवाले अनेक साहसी हुए हैं। उनके चिरंजीवी विचार विस्तारित होकर देश, समाज और धर्म की संस्कृति के रूप में लोक हितकारी बनते हैं। तात्कालिक विचारों का जन्म केवल व्यक्ति की करिष्माई-कारिगरी है। व्यक्ति के जाते ही वह विचार भी लुप्त हो जाता है। यह भी सच है कि, शुरुआती दौर में चिरंजीवी विचार भी किसी व्यक्ति का ही होता है, मगर जिस व्यक्ति का विचार असंख्य लोगों के हृदय तक पहुंचने में सफल हो जाता है, वही विचार अनुगामी पीढी के द्वारा और अधिक व्यापक विस्तार प्राप्त करता है। ऐसी समृद्ध चिरंजीवी विचारधारा ही सदियों तक अखंडित प्रवाहमान रहती है। भारत में चिरंजीवी विचारों की समृद्ध परम्परा रही है। नैतिकता, सदाचार, कला, विज्ञान और शुचिता संपन्न धर्म के रूप में वे विचार आज तक प्रवाहमान है। निरंतर प्रवाहमान विचारों के पीछे अनेक तत्त्वों की भागीदारी होती है, मगर सबसे एक महत्त्वपूर्ण बात यह देखी जाएगी कि, उस विचार का मुख्य केन्द्रीय बिन्दुअर्थात कोर प्रिन्सिपल क्या है?

जैन धर्म के मूल्य, अर्थात चिरंजीवी विचार मानवीय पटल पर किस तरह पहुंच सकें? इस मुद्दे को लेकर हम सब एकत्रित हुए हैं, तब प्राथमिक प्रश्न है कि, जैन धर्म का केन्द्रवर्ती विचार क्या है? सबसे पहले हमें उस केन्द्रबिन्दु का स्पर्श करना होगा। निर्विवाद सत्य है कि, **'स्व का हित और सर्व का हित'** यह जैनधर्म का मूलभूत केन्द्रीय विचार है। जैनधर्म की तमाम छोटी-बडी बातें, इसी केन्द्रवर्ती बिन्दु से ही विस्तारित हुई हैं। इसी केन्द्रवर्ती विचार के बलबूते ही, जैनधर्म सदियों से आजतक, अनेक विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अखंड टिका हुआ है। इसी विचार ने जैनधर्म को केवल मानवमात्र तक ही नहीं, अपितु समग्र प्राणीमात्र से जोडा है। **'स्व और सर्व के हित'** रूपी अपना यह कृपावंत विचार भगवान महावीर प्रभु ने जन सामान्य तक पहुंचाने में कुछ खास नीति-नियामकता अपनायी थी-

१) भगवान ने अपना विचार जनसामान्य की लोकभाषा में प्रस्तुत किया।

२) अपने विचारों के साथ जन-जन को हिस्सेदार बनाया।

३) विचार केवल शब्दों में ही न अटका न रहे, इसलिए पहले स्वयं उसे आचरण में लाया।

४) विचार को कितने लोगों ने स्वीकार किया? इसके बजाय कितने लोगों ने उसे गंभीरता से स्वीकार किया? यह बात उनके लिए महत्त्वपूर्ण थी।

५) पांचवी सबसे बडी बात, सर्वज्ञ भगवान के पास सच्चा दृष्टिकोन था। सच्चा दृष्टिकोन ही चिरस्थायी विचार बन सकता है। इसके विपरीत लोभ, दया, आकर्षण अथवा भय से प्रेरित विचार विकलांग होकर मर जाते हैं। यही सच्चा दृष्टिकोन ही श्रेष्ठ समाज का निर्माण करता है।

भगवान की उपरोक्त पद्धति आज भी प्रासंगिक है और सर्वकालीन रहनेवाली है।

किसी भी विचार को आत्मसात् करने के लिए मनुष्य के हाथों में तीन संसाधन होने जरुरी हैं-

(१) पहलाभाषा का है। (२) दुसरा साहित्य का है। (३)और तिसरा शिक्षा का है।

ये तीनों माध्यम मनुष्य की विचारग्राह्यता को परिपुष्ट बनाते हैं। इन्हीं तीन परिबलों की सहायता से विचार मजबूत और स्थिर बनता है। चलिए, इन तीन बातों की थोडी विस्तृत चर्चा करते हैं-

पहला क्रमांक भाषा का है। किसी भी व्यक्ति के विचार को दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाने में भाषा की बडी भूमिका होती है। भाषा ही विचार का मूर्त स्वरूप है। भाषा की डोर पकडकर ही विचार, पीढी दर पीढी आगे बढते रहते हैं। इसलिए विचार की शाश्वतता के लिए भाषा की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भाषा पर सवार होकर निकला विचार जीवंत रहता है। भाषा के सरकते ही विचार भी नष्ट होने लगता है। जैनधर्म के विचार अर्थात सिद्धांत,पिछली २६ शताब्दियों से आजतक इसलिए जीवंत है क्योंकि, उसे श्रुतपरम्परा और लेखनपरम्परा का बहुदिव्य आशीर्वाद, भाषा के माध्यम से मिला है। अर्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी और संस्कृत आदि भाषाएं जैनधर्म के विचार की संवाहक बनी। यहां,संस्कृत को छोडकर, शेष तीनों भाषाओं का प्राकृत वर्ग में समावेश है। प्राकृत, अर्थात् आमलोगों की लोकभाषा।

जैनधर्म के स्थापक तीर्थंकर परमात्मा ने आत्मा, मोक्ष, ज्ञान, अहिंसा और जीवन में विशुद्ध आचरण के विचारों को, चिरंजीव रखने के लिए, अर्धमागधी प्राकृत भाषा का अवलंब लिया था, कारण यह प्राकृत भाषा उस काल की सर्वमान्य लोकभाषा थी। कालांतर में संस्कृत भाषा का महत्त्व अधिक बढा,

मगर फिर भी जैनश्रमणों ने प्राकृत को जीवंत रखा।१३ वीं सदी के बाद मरुगुर्जर भाषा का उदयकाल आया। इस काल में उपलब्ध पूर्व-भाषित जैन साहित्य का मरुगुर्जर में अनुवाद हुआ, मगर तब भी जैन श्रमणों ने मूल भाषा को ठेस नहीं पहुंचने दी। आज स्थिति भिन्न है। वर्तमान समय में अंग्रेजी भाषा का उन्मादी दौर चल रहा है। कुछ लोगों की धारणा है कि, आज अंग्रेजी ही तमाम भाषाओंका एकमात्र विकल्प है। तमाम शास्त्रों का अंग्रेजी में रूपांतरण कर देना चाहिए। इसका मतलब तो यह हुआ किसंस्कृत और प्राकृत को मृतभाषा घोषित कर देना चाहिए। परमात्मा के विचार को चिरंजीवी रखने के लिए इस आत्मघाती झुकाव से बचना पडेगा। वर्तमान पीढी की सुविधा के लिए,अन्य भाषाओं का सहारा लेना तो ठीक है, मगर जैन धर्म के विचारों की मूल भाषा को दरकिनार करने की बात सोचना भी घातक हैं।

विवेक देब्रोय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदीजी के आर्थिक सलाहकार समिति के अध्यक्ष हैं। उन्होंने दिल्ली में इंडियन इन्टरनेशनल सेंटर(IIC) द्वारा आयोजित **'संस्कृत अनुवाद की कला और इतिहास'** विषय पर अपने व्याख्यान में इस संदर्भ में बडी महत्त्वपूर्ण बात कही है। वे कहते हैं-

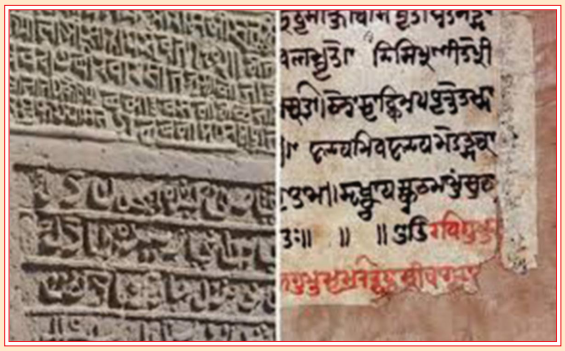

आज हम केवल संस्कृत भाषा को लुप्त कर रहे हैं, ऐसा नहीं है, बल्कि संस्कृत भाषा की गोद से उपजी अन्य प्रांतीय भाषाओं से भी हाथ धो रहे हैं। यही प्रांतीय भाषाएं संस्कृत के अभ्यास को सरल बनाने में सहायक बनी हैं। कारण, इनका वंश तो संस्कृत ही है। स्पष्ट अनुभव है कि, संस्कृत भाषा का अंग्रेजी में अनुवाद करने से मूलभूत अर्थ गुम हो जाते हैं। इसका तकनिकी कारण यह है कि, दोनों भाषाओं की अभिव्यक्ति के तौर-तरीके एक-दूजे से काफी भिन्न हैं। अंग्रेजी अनुवाद के चक्कर में पडकर हम मूल विचार के साथ-साथ संस्कृत भाषा के ज्ञान की भी हत्या कर रहे हैं। दूसरी तरफ संस्कृत के अनुवाद में अपनायी जा रही कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग भी संदेहपूर्ण है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करने के लिए जो आकलन विधि (अल्गोरिदम) उपयोगित होगी, उसे संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है। वह पोथी की लिपि भी नहीं पड सकती है और हम यह भी क्यों भूल जाते है कि हमारे महान ग्रंथों और उनके कर्ता विद्वानो भावविश्व को पहचानने की कला भी वह कैसें पढ पायेगी।

जैन श्रमण आज भी प्राकृत पढते हैं। वे इस भाषा के प्रज्ञावंत जानकार हैं। नयी रचनाएं भी करते हैं, परमात्मा के विचारों को सदा-चिरंजीवी बनाने के लिए यह उनका कृपावंत उपकार है। जैन धर्म के अधिकांश मूल ग्रंथों की भाषा प्राकृत है, इसलिए प्राकृत भाषा का जीवित रहना भी जरुरी है। जैनधर्म के विचार भविष्य में भी चिरंजीवी रहें, इसलिए भाषा संबंधी तीन काम जरुरी हैं-

१) विद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यापीठों एवं ज्ञानशालाओं जैसी तमाम शिक्षासंस्थाओं के पाठ्यक्रम(अभ्यासक्रम) में प्राकृतभाषा को प्रभावी स्थान देना पडेगा।

२) प्राकृत भाषा के साहित्य और शोध-अनुसंधान की प्रक्रिया को निरंतर गतिशील बनाना पडेगा।

३) प्राकृतभाषा को लोकभोग्य, अर्थात परस्पर वाचन-संभाषण कला से समृद्ध बनाना पडेगा।

विचारों की चिरंजीविता के लिए दूसरा जरुरी तत्त्व है- साहित्य। साहित्य शब्द से, यहां लिखित दस्तावेज की बात है। जिस तरह भाषा के द्वारा, बोल-सुनकर विचार अभिव्यक्त होते हैं, उसी तरह लिपि के रूप में निरंतर पढकर भी अभिव्यक्त होते हैं। बोली गई और सुनी गई बात कालांतर में भूली भी जा सकती है। लिखे गये विचार सदा जीवंत रहते हैं। श्रमण भगवान श्रीमहावीरदेव के पश्चात् लगभग ९०० वर्षों (इ.स. पूर्व ५ वीं शताब्दी) तक उनके विचारों को याद रखने की गुणात्मक परम्परा विद्यमान थी। आचार्यदेव श्री देवर्धिगणिजी के समय से, लेखन परम्परा की शुरुआत हुई और याद रखने की कलात्मक परम्परा शिथिल होती चली गई। यह तो बडा सौभाग्य है कि, आज भी श्रमण-श्रमणी वर्ग में याद रखने का पुरुषार्थ सार्थक हो रहा है। लगभग २०० वर्षों पूर्व मुद्रणयुग की शुरुआत हुई और धीरे-धीरे लेखन परम्परा भी क्षीण होती गई। लेखन परम्परा से तात्पर्य हस्तलेखन की प्रक्रिया है। **याद रखने की, लेखन की और मुद्रण की इन तीन परम्पराओं में केवल हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की परम्परा का ही समयकाल सबसे अधिक रहा है।**

लगभग लगातार १५०० वर्षों तक, पूर्व से चले आ रहे चिरंजीवी विचारों को शब्दबद्ध लिखकर रखने की परम्परा का वह काल, जैन साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल था। उस काल में पुस्तक लेखन को जैन गृहस्थों ने, एक विशेष कर्तव्य के रूप में अंगीकार किया था। जैन संघों ने विपुल धन का उपयोग कर ताडपत्र, वस्त्रपट अथवा कागज पर करोडों हस्तप्रतें लिखवाई और उनके संरक्षण की जिम्मेदारी भी उठायी। उस काल की ज्ञानभक्ति का ही परिणाम है कि, आज हमारे पास परमात्मा प्रणित चिरंजीव विचार उपस्थित हैं। उस काल में पुस्तक को मूर्ति के बाद और ज्ञानभंडारों को मंदिर के पश्चात्अग्रक्रम दिया जाता था। श्रमण-श्रमणी वर्ग स्वयं भी पुस्तक लेखन करते थे और दूसरों से भी करवाते थे। गृहस्थ, लिखित साहित्य की सुरक्षा करते थे। मगर बडा अफसोस है कि, हमारी इस अद्भूत संपदा पर ईस्लाम के आक्रमण की गाज गिरी और अथक परिश्रम में तैयार हुई करोडों हस्तलिखित पांडुलिपियों का बडा हिस्सा बर्बाद हो गया। **यह हमारे इतिहास का बडा दु:खद अध्याय था।** पिछली २५ शताब्दी में कितना लिखा गया? कहां रखा गया? कितना सुरक्षित रहा? उसके प्रामाणिक आंकडे भी नहीं मिले। बची हुई हस्तप्रतें कहां और कितनी संख्या में पडी हैं? उसका भी पता नहीं चला। **एक भरी-पूरी परम्परा उध्वस्त हो गई।** सौ वर्ष पूर्व तक भिन्न-भिन्न जैन भंडारों में लगभग एक करोड हस्तप्रतियां उपलब्ध थी। **तीव्र वेदना है कि, उनमें से अब मात्र २० लाख प्रतियां ही बची हैं।**

चिरंजीवी विचारों की विरासत स्वरूप आज हमारे हाथों में जितने भी शास्त्र उपलब्ध हैइन्ही में श्रेष्ठतम अभ्यासक्रम छिपा हुआ हैं। मूल्य आधारित जीवन का श्रेष्ठतम ज्ञान इन शास्त्रों में कूट-कूटकर भरा है। इस अनमोल साहित्य में छिपे, पूर्व के विचारों को आगे और चिरंजीवी बनाने के लिए तीन कार्यों को प्राथमिकता देनी पडेगी-

१) जैन हस्तप्रतों में छिपी ज्ञान की विरासत का सुनियोजित संवर्धन और संरक्षण।

२) प्राचीन लिपियों में छिपे रहस्यों की पहचान कर, शास्त्र के ज्ञान को बाहर प्रगट करना।

३) श्रेष्ठ भाषाविद् तैयार करना।

इन तीन उपक्रमों के माध्यम से शास्त्र समुद्धार का पुरुषार्थ करना पडेगा।

अतीत के विचारों को चिरंजीवी बनाने में तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है- शिक्षा।

शिक्षा, विचारों को परिबल देनेवाला महत्त्वपूर्ण घटक है। सामान्य ज्ञान द्वारा एक बार समाज खडा किया जा सकता है, मगर उसी समाज को लंबे काल तक, उन विचारों में प्रवृत्त रखना हो तो, सशक्त शिक्षाप्रणाली ही काम

आयेगी। वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिए, जिस तरह अनुकूल वातावरण चाहिए, उसी भांति विचारों को तरोताजा रखने के लिए, शैक्षणिक पृष्ठभूमि की खास जरुरत होती है। शिक्षा, विचारों के संक्रमण की सार्वत्रिक पद्धति का अवलंब है। शिक्षा विचारों का संवर्धन करने में सहायक सीढी हैं। और शिक्षासंस्थाएं, संवर्धित विचारों को शाश्वत रखने में मार्गदर्शी सहायक बनती हैं। **आज हम सबके सामने बडा प्रश्न खडा है कि, जैन धर्म सामान्य जनों के जीवन तक क्यों नहीं पहुंच रहा है? उत्तर स्पष्ट है कि, आज धर्म को वर्तमान शिक्षाप्रणाली से बाहर फेंक दिया गया है।**

ज्ञातव्य है कि, भारत में जब आधुनिक स्कुल व्यवस्था का अस्तित्व ही नहीं था, उस काल में शिक्षा की जिम्मेदारी **मंदिर, गुरुकुल, मठ और ज्ञान-पाठशालाओं** जैसे स्वायत्त शिक्षा केन्द्रों ने उठायी थी। ऋषियों ने शिक्षकों की भूमिका अदा की। शिक्षा ज्ञान प्राप्ति का स्रोत थी, इसलिए जीवन में धर्म आसानी से रच-बस जाता था। आज पूरी शिक्षाप्रणाली, शिक्षापीठ और शिक्षक उस परिपाटी से हट गये है। शिक्षा का व्यवसायीकरण हुआ, और शिक्षा ज्ञानकेन्द्री न रहकर, धनकेन्द्री बन गई। प्राचीन भारत की शिक्षाप्रणाली विश्व में इसलिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी, क्यो कि उसके पीछे मूल्य आधारित जीवन जीने की कला मुख्य थी। सुख और धन की लिप्सा के लिए न कोई पढता था और न ही कोई पढाता था। प्राचीन शिक्षाप्रणाली के संदर्भ में **पी. जितेन्द्रकुमार** और **प्रभाकर शर्मा** के लेखों का सार-संक्षेप संकेत यहां खास अवलोकनीय है-

प्राचीनकाल में केवल भारत ही एकमात्र ऐसा देश था, जहां शिक्षा के क्षेत्र में उच्चकक्षा के विद्यापीठ और सर्व-समर्थ शैक्षणिक संस्थाएं विद्यमान थी। ई.स. पूर्व ८०० से ई.स. २००० तक अर्थात् लगभग १२०० वर्षों के कालखण्ड में केवल हमारे देश में तक्षशिला, वाराणसी, पुष्पगिरि, विक्रमशिला, वलभी, औदंतपुरी, सोमपुरा, नालंदा, जगदल्लमहाविहार, नागार्जुन कोंडा और कांचीपुरम् जैसी अव्वल दर्जे की विश्वविद्यालयीन संस्थाएं कार्यशील थी। इन विद्यापीठों के पाठ्यक्रम का केन्द्रवर्ती विचार था **मानवीय जीवन में शुचिता संपन्न मूल्य आधारित ज्ञान की आवश्यकता।** इसके लिए दीर्घवर्तीशिक्षा की व्यवस्था थी, केवल प्राथमिक शिक्षा ही लक्ष्य नहीं था। शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षकों को पुराने पाठ्यक्रमों में बढोतरी करनेऔर नये पाठ्यक्रमों को तैयार करने की पूरी स्वतंत्रता थी। वर्तमान शिक्षाप्रणाली की तरह केवल निश्चित अभ्यासक्रम के ढांचे में बांधकर रखने का नियम नहीं था। विद्यार्थी जब तक प्रत्येक विषय में परिपूर्ण निपुणता हांसिल न कर ले, तब तक उसे उपर के वर्ग में प्रवेश नहीं दिया जाता था। परीक्षाएं और डिग्रियां ज्ञानप्राप्ति की कसौटी नहीं होती थी। शिक्षा आजीविका चलाने का जरिया नहीं था। इन सब कारणों से बाहरी परिबल उस काल में विद्यापीठों की गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करते थे।

भूतकाल में जैनदर्शन का ज्ञानकेन्द्र वलभी विद्यापीठ इसी परम्परा का साद्यंत शिक्षण का सक्रिय केन्द्र था। **इसी वलभी में आचार्य देवर्धिगणिजी ने श्रुतपरम्परा को लेखनविद्या से जोडकर, एक नये ज्ञानपर्व की शुरुआत की थी।** श्रुतलेखन के इस लंबे पुरुषार्थी युग का कृपा प्रसाद ही,शास्त्र रूप मे आज हमारे हाथों मे उपलब्ध है। कालांतर मेंधीरे-धीरे प्राचीन शिक्षाप्रणाली पर ग्रहण लगने लगा। औद्योगिकरण, पूंजीवाद, साम्यवाद और उन्मादी उपभोक्तावाद के पेरौं तले, प्राचीन शिक्षाप्रणाली पूरी की पूरी रौंदी गई। और नयी शिक्षाप्रणाली विश्वस्तरीय व्यापारीकरण के चंगुल में फंस गई।

प्रसन्नता की बात है कि, फिर एक बार अब प्राचीन एवं वर्तमान शिक्षा पद्धतियों के तुलनात्मक अध्ययनों पर विमर्श चलने लगा है। फिर विचार उठने लगे हैं कि, सुखकेन्द्री, धनकेन्द्री और मात्र सूचना-परक आज की शिक्षा के सामने मूल्य केन्द्रित शिक्षाप्रणाली को क्यो न जीवंत किया जाये? सबसे पहले यह विचार देश की स्वतंत्रता के तुरन्त बाद उठा था। उस समय **डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन**जी की अध्यक्षता में **'एज्युकेशन कमीशन'** का गठन हुआ। काम सौंपा गया किभारतीय शिक्षणप्रणाली का स्वरूप कैसा होना चाहिए। १९४९ में कमीशन की रिपोर्ट आयी कि **'शिक्षा का हेतु जीवन के अर्थ से जुडा होना चाहिए। भारतीय संस्कृति और प्राचीन ज्ञान की विरासत ही शिक्षा की पृष्ठभूमि बनना चाहिए। शिक्षण आजीवन चलनेवाली प्रक्रिया का मूलभूत अंग बननी चाहिए। आत्मकक्षा की जीवन क्षमता, शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।'** मगर आज सात शताब्दियां गुजर गई। उपरोक्त बातों की उपेक्षा ही हुई।

हाल ही में एक समाचार पत्र में खबर छपी कि, नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करने की क्षमता में बढोतरी के लिए, विद्यापीठ अनुदान आयोग (U.G.C.)ने जीवन कौशल नामक पाठ्यक्रम तैयार किया है।

शिक्षा संस्थानों को पदवी पूर्व स्तर पर इसे कार्यान्वित करने की सूचनाएं दी गई है। U.G.C. का मत है कि, व्यावसायिक पाठ्यक्रम की क्षमता बिना नैतिक मूल्यों के संभव नहीं है। संवादकुशलता, व्यवस्थापनकुशलता में मानवी मूल्यों का भी जुडना जरुरी है। क्यों कि, मानवीय मूल्यों में प्रेम, सद्भावना, अहिंसा, सत्य, शांति जैसे तत्त्वों का समावेश है।

आज तो हमारा मुद्दा यह है कि, जैनधर्म की मूल्यअधिष्ठित शिक्षाप्रणाली के गुणात्मकविकास के लिए हमारे पास कौनसा मानचित्र है? इस कार्य के लिए हमें तीन मुद्दोंपर तीन प्रकार के काम करने पडेंगें-

१) **हमारे पूर्वजों ने जिस निष्ठा के साथ और जिस प्रक्रिया से ज्ञान/श्रुत के संवर्धन और संरक्षण के लिए पुरुषार्थ किया था, उसी तर्ज में विकसित करना पडेगा।**

२) **जैनधर्म की प्रामाणिक और बौद्धिक जानकारियां प्रभावी रूप से उपलब्ध करवानेवाली समर्थ संस्थाओं को बलवान बनाना होगा।**

३) **पठन-पाठन की परम्परा का पुनर्जागरण करने हेतु योग्य शिक्षाविदों (एकेमेडेशियन) तैयार करने होंगे।**

किसी भी समाज का वास्तविक विकास उसकी बौद्धिक संपदा द्वारा आंका जाता है। सद्भाग्य है कि, जैनों के पास आज विश्व की सबसे दुर्लभ, सबसे अनमोल और सबसे अधिक प्रामाणिक ज्ञानसंपदा उपलब्ध है। कमी सिर्फ इतनी है कि, हमने उसके उपयोग के जरुरी संसाधनों को विकसित नहीं किया हैं। भाषा, साहित्य और शिक्षा को अछूत मान लिया। योग्य शिक्षाविदों की उपेक्षा की। श्रुत को दुय्यम दर्जे का स्थान दिया और आधुनिक भौतिक विकास के चमकते कांच के टुकडोंको महत्त्व दिया।

सारांश यही है कि, **जैनधर्म के चिरंजीवी विचार अर्थात मूल सिद्धांत हमारी प्राथमिक आवश्यकता बनें, इसलिए उन विचारों का सर्वांगीण मूल्यांकन होना चाहिए।** स्व का हित सर्व का हित, सहअस्तित्व, औदार्य और सत्य के सिद्धांत जैसी नींव पर जैनधर्म खडा है और भविष्य में भी खडा रहेगा। प्रत्येक आने वाले कल की रक्षा के लिए, जैनधर्म के चिरंजीवी विचार सदा उदयमान सूर्य की तरह प्रकाश देते रहेंगे।

(अनुवाद- ओमजी ओसवाल)

कार्यविवरण

शास्त्र संशोधन प्रकल्प के अंतर्गत **लोकप्रकाश, पृथ्वीचंद्रचरित्र, सम्यक्त्व सप्ततिका सह अवचूरि, छंदोरत्नावली, ऋजुप्राज्ञव्याकरण, वृत्तरत्नाकर सह टीका** का संपादन कार्य प्रवर्तमान है।

वर्धमान जिनरत्नकोश प्रकल्प के अंतर्गत **पू.आ.श्री मुनिचंद्रसू.म., पू.आ.श्री नररत्नसू.म., पू.ग.श्री सुयश-सुजसचंद्रवि.म., पू.ग.श्री धर्मरत्नवि.म., पू.मु.श्री यशरत्नवि.म., पू.मु.श्री तीर्थयशवि.म., पू.मु.श्री वंदनरुचिवि.म., पू.मु.श्री उदयरत्नवि.म., एवं श्री मयंक बडजात्या, खुशबू मेहता, प्रा. सचिन कंदले (पीएचडी विद्यार्थी)**को कृति, हस्तलिखित प्रत तथा संदर्भ साहित्य संबंधि माहिती प्रदान करने का लाभ मिला।

- **लोकप्रकाश** संपादन का कार्य अंतिम चरण में है।
- पू.आ.**श्रीजगच्चंद्रसू.**म. (डहेलावाला) के शिष्य मुनिश्री **शीलचंद्रवि., जिनचंद्रवि., निर्ग्रंथचंद्रवि.**म. आदि मुनिभगवंत एवं साध्वीजी भगवंत पू.पं.श्री **नेमकुशलजी** की कृतियों का संपादन कर रहे हैं।
- पू.आ.श्री वि.**यशोवर्मसू.**म.के शिष्य मुनिश्री **तीर्थयशवि.**म. **ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र** की पं.श्री **कस्तूरचंद्रजी** कृत टीका का संपादन कर रहे हैं।
- पू.सा.श्री **मधुरहंसाश्रीजी** म. पू.उपा.श्री **विनयविजयजी** म. की चार अप्रगट कृतियों का लिप्यंतर कर रही हैं।
- पू.सा.श्री **धन्यहंसाश्रीजी** म. **पृथ्वीचंद्रचरित्र** का लिप्यंतर कर रही हैं।
- सु. **ओमजी ओसवाल श्रेयांसजिनचरित** का भावानुवाद कर रहे हैं।
- कोरोना कोविड-१९ की वजह से सभी श्रुतसेवक अपने घर पर रहकर कार्य कर रहे हैं।

प्राचीन श्रुतसंपदा के समुद्धार के लिए समुदार सहयोग देनेवाले महानुभाव

- सुजय गार्डन जैन संघ, मुकुंदनगर - पुणे
- पू. आ. श्री **भव्यरत्नसू.** म. सा. की प्रेरणा से दिनेश रसिकलाल गांधी, पुणे - केंप
- श्रीम. वसंतप्रभाबेन कांतिलाल शाह ह. - हरेन, रोहित
- दीपक मेहता ह.- आर्जव, मोहिल
- निखिलेश अरविंद शाह
- जैन सोश्यल ग्रुप, नारी संघटना, पुणे

पदार्पण

श्रुतभवन में पू. आ. श्री **विरागसागरजी** म., पू.सा.श्री **अमितप्रज्ञाश्रीजी** म., पू.सा.श्री **शीलभद्राश्रीजी** म. का पदार्पण हुआ।

चातुर्मास स्थल एवं संपर्कसूत्र

- **पूज्य गणिवर्यश्री वैराग्यरतिविजयजी म.सा.**
  श्रुतभवन संशोधन केंद्र, ४७/४८ अचल फार्म,
  सच्चाइ माता मंदिर के पास, कात्रज - पुणे
  संपर्क - ७७४४००५७२८
- **पूज्य मुनिश्री प्रशमरतिविजयजी म.सा.**
  श्री सुमतिनाथ जैन मंदिर, १४२, फार्मलँड, रामदास पेठ, नागपुर
  संपर्क - ९८२३०१७७९९
- **पूज्य साध्वीश्री जिनरत्नाश्रीजी म.सा.**
  अंजनशलाका अपार्टमेंट, बी - १०३,
  दमण रोड, चला - वापी
  संपर्क - रोनकभाई शाह - ९९९८९६३९३६

प्रतिभाव

यह श्रुतभवन हमारी आनेवाली पीढियों के लिए अमूल्य विरासत है। बेजोड, अद्भुत, अलौकिक ज्ञान की ऐसी सुंदर उपासना।

धन्य है हमारे गुरुदेव जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन इस कार्य के लिए समर्पित कर दिया।धन्यवाद उन सभी महानुभावों का जो तन-मन-धन से इस महान कार्य को आगे बढाने में संलग्न हैं।

सौ. मंजुलता लोढा
मुंबई स्थित जैन तीर्थ श्री लोढाधाम (संस्थापक-अध्यक्षा)

Printed Matter

Posted under clause 121 & 114 (7) of P & T Guide

To,

From : Shrutbhavan Research Centre
(Initiation of Shrutdeep Research Foundation)
47/48, Achal Farm, Nr. Sachchai Mata Mandir, Ahead of Jain Agam Temple, Katraj, Pune-411046
Mo. 07744005728 Email : shrutbhavan@gmail.com Website : www.shrutbhavan.org

For Informative and Inspirational speeches about Shrut please subscribe our Shrutbhavan YouTube channel